षष्ठोऽध्याय: आत्मसंयमयोग[सम्पाद्यताम् ॐ

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

चिंता फल की कभी नहीं, करे योग्य ही काम।

सच्चे सन्यासी बने, साधु महज है नाम ॥६– १॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥

अर्जुन योगी कौन है, सन्यासी पहचान।

जो त्यागे संकल्प नही, योगी तू ना मान ॥६– २॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

एक मार्ग है कर्म ही, पाना चाहे योग।

जान लिया जब योग है, शांती कर्म संयोग ॥६– ३॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

भोगे ना जो इन्द्रियाँ, नही कर्मफल भान।

छोड़े जो संकल्प सभी, योगी उसको मान ॥६– ४॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

बढ़ तू ऊपर ही सदा, नीचे मत रख चाल।

तू ही अपना मित्र है, तू ही शत्रु का जाल ॥६– ५॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

मन वश में जिसने किया, मित्र वो अपना आप।

जो मन के वश में रहे, स्वतः शत्रु का श्राप ॥६– ६॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥

स्व जीत से चैन मिले, ईश्वर भी मिल जाय।

सर्दी गर्मी सुख दुख हो, निन्दा यश न सताय ॥६– ७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

विद्या से जो तृप्त हो, लिए इन्द्रियाँ जीत।

माटी को सोना कहे, योगी की यह रीत ॥६– ८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

सदा रखे सम भाव जो, नहीं आंतरिक भाव।

मित्र शत्रु हो ग़ैर सगा, पापी संत समभाव ॥६– ९॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

योगी खोजे हर समय, लगातार एकांत

इच्छारहित अपरिग्रही, मन को रखते शांत ॥६– १०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥

साफ़ जगह आसन बिछा, स्थिर मन रख हर हाल।

ऊँचा ना, नीचा नही, तृण वस्त्र मृग छाल ॥६– ११॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

वश में हो चित्त इंद्रियाँ, मन का रख के ध्यान।

योगी योगाभ्यास में , आसन का सम्मान ॥६– १२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

काया मस्तक और गला, रख ले अचल समान।

स्थिर दृष्टि पे नासिका, चारों दिशा न ध्यान ॥६– १३॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

मन निर्भय और शान्त हो, ब्रह्मचारी व्रत मान

संयत हो बैठा रहे , मुझ में रख के ध्यान ॥६– १४॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

जिसका मन वश में रहे, सदा करे जो योग।

चैन मिले हर हाल में , मुझ से हो संयोग ॥६– १५॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

अर्जुन एेसा योग है, भूख ख़ाय ना पाय

क्या सुप्त चैतन्य क्या, सिद्ध नही हो पाय ॥६– १६॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

यथायोग्य खाये फिरे, कर के उचित प्रयास।

यथायोग्य सोये जगे , योग करे दुख नाश ॥६– १७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥

चित्त अगर वश में रहे, आत्मा में मिल जाय।

इच्छा रहे न काम की, वह योगी कहलाय ॥६– १८॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

दीप नही है काँपता , हो जो वायु अभाव।

चित्त दीप है योगी का , अनुशासन का भाव ॥६– १९॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥

एकाग्रता अभ्यास से, शांत चित्त को पाय।

आत्मा से आत्मा दिखे, परमानंद सहाय ॥६– २०॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

अतीन्द्रिय आनन्द मिले, सुक्ष्म बुद्धि से पाय

विचलित वो होवे नही , योगी में रह जाय ॥६– २१॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

पा ले जब परमात्म को, समझ उच्चत्तम बात।

विचलित वो होवे नही, चाहे हो आघात ॥६– २२॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

दुख दुनिया संयोग से, अलग वही जो योग।

जोश व धीरज से करे, विचलित चित्त न रोग ॥६– २३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥

उपजे संकल्पित कामना, करते उनका त्याग।

इन्द्रियों को वश करे, मन में ना हो राग ॥६– २४॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

धीरे धीरे साधना, मेधा वश हो जाय।

करें न और विचार अब, चित्त पकड़ में आय ॥६– २५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

मन चंचल है स्थिर नहीं, भागे इत उत ओर।

क़ाबू उसको कीजिये, पकड़े मन की डोर ॥६– २६॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥

पाप रहित मन शांत जो, शांत रजोगुण होय।

एक हुआ परब्रम्ह से, आनंद अनुभव होय ॥६– २७॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

पापरहित योगी हुआ, अंतरमन में योग।

परमसत्य से जो जुड़ा, परमानंद का भोग ॥६– २८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

दिखे सभी में आत्मा, भूत आत्म समान।

ब्रम्हलीन योगी सदा, देखे एक ही जान ॥६– २९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

देखे जो सर्वत्र मुझे, मुझमे सबको पाय।

छुप ना वो मुझसे सके , छुपा न मुझसे जाय ॥६– ३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

देख मुझे हर जीव में, भजता एेक समान।

विद्यमान मुझमे रहे, वह योगी विद्वान् ॥६– ३१॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

अपनी भाँति सब जगह, देखे पार्थ समान।

सम सुख या तो दुख रहे, योगी उत्तम जान ॥६– ३२॥

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।

एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥

पथ योग की बात करे, मधुसूदन तू जान।

चंचल मन थिर ना रहे, मेरा ये अनुमान ॥६– ३३॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

केशव मन चंचल रहे, हठ में है बलवान।

ज्यों वायु वश है कठिन, दुष्कर ऐसा जान ॥६– ३४॥

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

हे वीर संदेह नहीं, मन वश भारी काम।

बैरागी अभ्यास से, अर्जुन मन को थाम ॥६– ३५॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

असंयत मन योग नहीं, एेसी मेरी राय।

मन को वश कर जो करे, अात्मयोग वह पाय ॥६– ३६॥

अर्जुन कहे।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

रख के श्रद्धा योग में, मन विचलित हो जाय।

नही योग केशव मिले , वो जन किस गति जाय ॥६– ३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥

बादल बिछड़े नष्ट हो, योग मिले ना भोग।

योगी भटके मोह में , केशव कैसा रोग ॥६– ३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥

यह मेरा संदेह हैं, दूर करे प्रभु आप।

नही आपसा और है, दूर करे संताप ॥६– ३९॥

कृष्ण कहे।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥

अर्जुन होता नाश नही, लोक होय परलोक।

जो रहते कल्याण पथ, कोई सके न रोक ॥६– ४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

जो योगी असफल रहे, पवित्र लोक पश्चात।

अच्छा कुल स्वागत करे, पार्थ कुछ नही बात ॥६– ४१॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

या जन्मे उस कुल सदा, बुद्धिमान पहचान।

दुर्लभ ऐसे जन्म है, अर्जुन ऐसा जान ॥६– ४२॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

पूर्व जन्म की चेतना, बारम्बार सुयोग।

अर्जुन पुन:प्रयास करे, जन्म करे उपयोग ॥६– ४३॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

पूर्व जन्म अभ्यास से, फिर आकर्षित होत।

जिज्ञासु बन योग के, जले न तप की जोत ॥६– ४४॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

देखा सतत प्रयास से, योगी मिटते पाप।

बाद अनेको जन्म भी, मिलता परम् प्रताप ॥६– ४५॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

हो ज्ञानी या तपस्वी, योगी बड़ा महान।

सत्यकाम कर्मी बड़ा, योगी अर्जुन जान ॥६– ४६॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

अन्तर में मुझको रखे, उत्तम योगी जान।

भक्ति से मुझको भजे, योगी परम महान ॥६– ४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इतिश्री छठा अध्याय